रात्रि बोधरात्रि

का

वैदिक सन्देश

(त्रि का प्रतीकात्मक मौलिक विवेचन)

लेखक :

डॉ० ओमप्रकाश वेदालंकार

१७, कृष्ण नगर

गोलबाग मार्ग भरतपुर (राज.)

आर्यसमाज हिण्डौन सिटी (राज०) द्वारा

प्रकाशित एवं प्रचारित

शिवरात्रि संवत् २०४५
(६ मार्च, १९८९)

दयानन्दाब्द १६४
मूल्य ७५ पैसे

बोध : उठो जागो

त्रातारो देवा अधि वोचता नो मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः
वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ।
(ऋग्वेद 8.48.14)

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ।
(ऋग्वेद 5. 44. 14)

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्तिः
यन्ति प्रमादमतन्द्राः । (ऋग्वेद 8.2.18)

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च । (यजुर्वेद 16.41)

कलि शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः
उत्तिष्ठन् वै त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्, चरैवेति चरैवेति ।
(ऐतरेय ब्राह्मण)

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः । (गीता 2.69)

जागु री बैरी अब का सोवे रैन गई दिन काहे को खोवे
जिन जागा तिन मानिक पाया तैं बौरी सब सोय गंवाया,
जागत ही सोवत रहै तेहि को सकै जगाई । —कबीर

कौन भाग्यशाली नर होगा जग में उस से बढ़कर
परमोन्नति जो करे स्वनिर्मित सोपानों पर चढ़ कर ।
—दिनकर ('अंगराज' में)

हर रात के पिछले पहर में इक दौलत लुटती रहती है
जो जगता है सो पाता है जो सोता है सो खोता है ।
जाग जाग रे जीव जगत् में क्या न तुझे अब भी सूझा,
उसे हृदय से लगा न जिसका कोई भी अपना दूजा
सच्चा सेवा भाव इसी में शुद्ध भक्ति भण्डार भरा
प्राणिमात्र से प्रेम यही है अलख निरंजन की सेवा ।

ओ३म्

आओ शिवरात्रि मनाएं

ऋषि: गोपथः भरद्वाजश्च । देवता रात्रिः । छन्दः अनुष्टुपः ।
शिवां रात्रिमनुसूर्यं च हिमस्य माता सु हवा नो अस्तु
अस्य स्तोमस्य सुभगे निवोध येन त्वा वन्दे विश्वासु दिक्षु ।

अथर्ववेद 19.49.5

इस मंत्र का देवता (वर्ण्य-विषय) रात्रि है और ऋषि (मन्त्रद्रष्टा) वल, शक्ति और अन्न (वाज) को धारण करने वाला–'भरद्वाज' वह व्यक्ति है जो गोपथ अर्थात् वेदवाणी के मार्ग का अनुसरण करने वाला है। इस मत्र में 'शिवरात्रि' और 'वोध' दोनों शब्दों का सार्थक प्रयोग हुआ है। मन्त्र-स्तोता की यह कामना है कि यह कल्याणकारिणी रात्रि जीवन में सदा आह्वान योग्य वनी रहे—हम उसे सदा पुकारते रहें जो सूर्य का अनुसरण करने वाली है तथा हृदय को अत्यन्त शीतलता प्रदान करने से हिम (वर्फ) की भी माँ है। हे स्तोता ! इस स्तोम के सौन्दर्य का अनुभव कर सदा प्रवोधक वना रह, जिस से सभी दिशाओं में तुम्हारी वन्दना और जयजयकार हो सके।

शिवरात्रि–अर्थ और वैदिक भावना :

'शिवरात्रि' शब्द में दो पद हैं—शिव + रात्रि । उपर्युक्त मंत्र में दोनों पदों का अलग-अलग प्रयोग हुआ है। पौराणिक भावना के अनुसार वर्ष में फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी शिव-चतुर्दशी है इसे ही शिवरात्रि कहा जाता है अर्थात् शिव की रात्रि वह रात्रि जिस में व्रत पूर्वक देव विशेष शिव की आराधना की जाए । वैदिक भावना के अनुसार 'शिव' शब्द रात्रि का विशेषण है अर्थात् शिव (मगल या सुख) प्रदान करने वाली रात्रि । वेद के प्रमुख अंग निरुक्त में महर्षि यास्क ने शिव और रात्रि दोनों पदों की व्याख्या की है।

शिव—'शेव इति सुख नाम, शिष्यतेर्वकारो नामकरणो
ऽन्तस्थान्तरोपलिङ्गी, विभाषितगुणः । शिव मित्यप्यस्य भवति ।'
(निरुक्त दैवत काण्ड 10. 2. 17. 9)

अर्थात् शेव या शिव सुख का नाम है । 'शेवति हिनस्ति दुःखमिति शेवः शिवो वा'—जो दुःखों को दूर करता है उसका नाम शेव या शिव है । हिंसार्थक भ्वादिगणी 'शिष्' धातु से 'व' प्रत्यय । गुण विकल्प से है । गुणाभाव में 'शिव' रूप होता है ।

रात्रि—'रात्रिः कस्मात् ? प्ररमयति भूतानि नक्तंचारिणी,
उपरमयतीतराणि ध्रुवीकरोति, रातेर्वास्याद्दानकर्मणः
प्रदीयन्तेऽस्यामवश्यायाः' । (निरुक्त 2.6,19.7)

अर्थात् 'रात्रि' शब्द के तीन निर्वचन हैं—

1. यह रात्रि में विचरण करने वाले उल्लू, चोर आदि प्राणियों को रमण कराती है ।
2. यह दिवाचारी मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों को काम से उपरत (हटा) कर निद्रा द्वारा स्थिर कर देती है ।
3. यह प्रदात्री होने से रात्रि है—इस में ओसादि प्रदान की जाती है—रात्रि में ही ओस पड़ती है ।

अथर्ववेद का यह मन्त्र 'शिवरात्रि' सुखदायक रात्रि का विशेष रूप से आह्वान करता है । जीवन में दिन तो प्रायः कर्मशील होने से असुखदायी नहीं होते किन्तु रात्रियाँ भी यदि सुखकारक बनायी जा सकें तो समस्त जीवन ही शिवरूप हो जाता है । रात्रि का 'अशिव' क्या है इस ओर कुछ संकेत 'रात्रि' शब्द के निर्वचन में महर्षि यास्क ने दिये हैं । रात्रि का प्रथम दुःख है कि एकान्त, शान्त और अन्य प्राणियों को निद्रा की गोद में विश्रान्त देखकर प्राणियों में उल्लू आदि तथा मनुष्यों में चोर, डाकू या व्यभिचारी पुरुष अपने दुस्कृत्यों से रात्रि को अमंगलकारी बना देते हैं । विशेषज्ञों का यह भी कथन है कि शरीर में रोगों का प्रसार जितनी

शीघ्रता से रात्रि-विश्राम की अवस्था में होता है उतना दिन की गतिशीलता में नहीं। इसी कारण शयन से पूर्व औषध—उपचार का जितना लाभ है उतना अन्य समयों में नहीं है।

रात्रि का द्वितीय दुःख दिन में परिपूर्ण कर्मशील रहक र रात को निद्रा देवी की गोद में पूर्ण विश्राम या शान्ति प्राप्त न कर सकने का है। जो व्यक्ति दिन में थक कर रात को स्वप्न रहित नीन्द का आनन्द उठाते हैं उन का स्वास्थ्य उत्तम वना रहता है कितनी ही आधि व्याधि ऐसी हैं जिनमें चिकित्सक पूर्ण विश्राम और नीन्द की ओर विशेष ध्यान ही नहीं देते अपितु औषधि या इन्जैक्शन द्वारा रोगी को नीन्द में लाने की भी चेष्टा करते हैं। सामान्य मनुष्य भी विना भोजन या पानी के कुछ दिन रह सकता है किन्तु एक रात्रि ही विना नीन्द के उसे विताना कठिन और विशेष कष्टकर अनुभव होता है।

रात्रि का तृतीय अर्थ प्रदाता होना है। प्रकृति का यह ऐसा काल है जिस म प्रकृति ओस टपकाती है, चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों द्वारा औषधियों में रस तथा प्राणियों में शीतलता और आल्हाद उत्पन्न करता है। यदि रात्रि के ये लाभ धरती को प्राप्त न हों तो यहाँ सुख के स्थान पर दुःख ही दुःख अनुभव होने लगेंगे।

रात्रि अपने इन तीन विशिष्ट रूपों के कारण शिव अर्थात् सुखकारी भी बनाई जा सकती है और अशिव अर्थात् दुःखदायी भी। यदि वह शिव होगी तो रात्रि आगमन पर जीव-जन्तु चिन्तातुर और दुःखी अनुभव नहीं करेंगे अपितु मंगलकारिणी होने से उस का हृदय से आह्वान करेंगे।

मनोवेत्ताओं के अनुसार सुखकारी रात्रि के लिए शयन से पूर्व मन को शिव-संकल्प युक्त वनाना अत्यन्त आवश्यक है। शिवरात्रि के लिए संकल्प भी शिव हों इस के लिए वैदिक आचार-संहिता में कुछ उपाय विहित हैं। सर्व प्रमुख उपाय है मन को शिव-संकल्प की वार-वार प्रेरणा देना—'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु'। वह मेरा मन शिव संकल्पों वाला

हो। यह प्रेरणा एक बार नहीं अपितु अर्थ सहित छह शिव-संकल्प मन्त्रों का प्रति रात्रि शयन से पूर्व पाठ करने से प्राप्त होती है। यजुर्वेद अध्याय 34 के इन छह मन्त्रों में मन के विशिष्ट कार्यों का वर्णन है तथा उसे शिव-संकल्पों की प्रेरणा दी गई है। ऐसे आचरणशील मनुष्यों को स्वप्नरहित गाढ़ी निद्रा आती है, स्वप्नदोषादि उन्हें कभी नहीं होते। उन्हें ऐसा लगता है कि उनकी यह रात्रि वास्तव में 'हिमस्य माता' शीतलता-सुख और शान्ति की जननी हो गई है। अन्य उपायों में हैं— रात्रि-शयन पूर्व पारिवारिक सत्संग। इस में परिवार के सभी छोटे-बड़े एकत्र हो कर किसी विशेष स्वाध्याय योग्य पुस्तक से कोई सुन्दर विचार मन में धारण करते हैं, परस्पर यथा योग्य एक दूसरे का अभिवादन व नमस्कार करते हैं तथा व्यतीत सुदिन के लिए परमात्मा का हृदय से धन्यवाद करते हुए उस से शुभ शिवरात्रि की प्रार्थना करते हैं। शरीर शास्त्रियों का कथन है कि रात्रि शयन से पूर्व जल से हाथ--मुँह दन्त आदि प्रक्षालन करने वालों के रोग व थकावट दूर होती हैं तथा उन्हें बाधा-रहित गाढ़ी नीन्द आती है। आज के जो नवयुवक या नवयुवतियाँ रात में सोने से पूर्व अश्लील और अभद्र पुस्तकें, पत्र-पत्रिकायें चित्रों का पठन व दर्शन करते हैं उन की रात्रि कभी भद्र या शिव नहीं बनती। रात्रि के अशिव होने से उन के दिवस और सम्पूर्ण जीवन ही अभद्र हो जाता है। इस मन्त्र का द्रष्टा ऋषि 'गोपथ भरद्वाज' भी अपनी विशेषताओं से इसी भावना की ओर संकेत कर रहा है।

रात्रिदेवतात्मक इस मन्त्र में रात्रि का एक विशेषण 'अनुसूर्यम्' भी है जिसका अर्थ है सूर्य का अनुसरण करने वाली। सूर्य प्रकाश, सौन्दर्य, आकर्षण, ऊर्जा, गति का प्रतीक है। रात्रि सूर्य का पीछा करते आती है- सूर्यास्त होते ही रात्रि का साम्राज्य विस्तृत हो जाता है और वह प्रभात-कालीन सूर्य का स्वागत करने की प्रेरणा दे कर चली जाती है। इसी प्रकार शिवरात्रि के इस सन्देश को ग्रहण कर जो व्यक्ति सूर्य के समान सौन्दर्य, आकर्षण, ऊर्जा एवं गति को जीवन में धारण करते हैं वे सदा प्रसन्न रहते हैं।

शिवरात्रि : बोधरात्रि

अथर्ववेदीय उपर्युक्त मन्त्र में 'निवोध' शब्द बोध या जागरण का सन्देश देता है। आज से 150 वर्ष पूर्व आज के दिन फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को टंकारा के एक शिवालय में चौदह वर्ष के बालक मूलशंकर ने सच्चा 'बोध' प्राप्त किया था। तब से यह विशिष्ट रात्रि बोधरात्रि बन गई है। बालक के पिता सामवेदी ब्राह्मण थे तथापि बालक मूलशंकर को उस छोटी-सी अवस्था में उन्होंने सम्पूर्ण यजुर्वेद कण्ठाग्र कराया था। प्राचीन काल में सम्भवतः सभी व्रती जनव्रत पूर्वक उस 'शिव' के सच्चे स्वरूप दर्शन के निमित्त रात रात भर जागकर भी अपनी योग निष्ठा में अटल रहते थे। किन्तु वह बोध की रात तो अनोखी बनकर आई थी। स्वामी समर्पणानन्द जी के शब्दों में—

आज की रात निराली चढ़ी,
इसे रात कहूँ या प्रभात कहूँ।

यह एक महामानव का 'प्रबोध' या 'निबोध' था जो अज्ञानान्धकार से स्वयं जागा और फिर समस्त जग को जगा दिया। शिव-दर्शन की प्रबल उत्कण्ठा। दिन भर का व्रत और रात्रि का जागरण। मन पुराण-कथा में श्रुत शिव की सर्वशक्तिमत्ता और महान् व्यापक शौर्य की सीमा में खोया हुआ। आँखें पिण्डी पर केन्द्रित। किन्तु जब उस चेतन बालक ने उस पिण्डी पर चढ़े पावन प्रसाद को मूषकों द्वारा खाते, बिखेरते और मूर्ति को अपवित्र करते देखा तो उस की पुण्य आत्मा व्याकुल हो उठी। उस का पावन हृदय लिंगमात्र स्वरूपधारी शिव के चारों ओर केन्द्रित हो गया। उन्हें बोध हुआ कि शक्तिमान् शिव अपने ऊपर से चूहों को हटाने में भी असमर्थ होवे यह कैसे सम्भव है? छोटे से शरीर में बालक की महान् आत्मा एक ऐसे सर्वव्यापक सच्चे शिव के दर्शनों के लिए व्याकुल हो उठी जो—

"सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्,
न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार,
अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक,
सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय. नित्य, पवित्र और
सृष्टिकर्त्ता है।"

इस विषम स्थिति ने बालक मूलशंकर के मन में ऐसा घात-प्रतिघात उत्पन्न किया कि उसी क्षण उस को पाषाण की पिण्डी में शिव न होने का निश्चय हो गया और उस प्रबुद्ध चेतन बालक ने उस महाघोर रात्रि में ही सत्य शिव की गवेषणा का दृढ़ संकल्प धारण कर लिया। यह संकल्प ही महर्षि दयानन्द के जीवन का आदि सूत्र बन गया। इतिहास की इस लघुतम घटना द्वारा वैदिक आर्य संस्कृति के पुनरुद्धारक, आर्य जाति के संरक्षक, पराधीन भारत को स्वतन्त्रता के सर्व प्रथम प्रेरक और विश्व को फिर से वेदों की आध्यात्मिक पावनता की ओर मोड़ देने वाले एक छोटे से बालक को महर्षि दयानन्द बनने का सूत्रपात हुआ। तब से यह प्रेरक पावन पर्व आर्य समाज के इतिहास में 'महर्षि दयानन्द बोध रात्रि' के रूप में स्वर्णिम अक्षरों में अंकित हो गया।

यह बोध-पर्व व्यक्ति, जाति, समाज, राष्ट्र, विश्व सब को जगाता आता है। ऋग्वेद की पावन ऋचायें, ऐतरेय ब्राह्मण का दिव्य सन्देश, गीता की पवित्र भावना और सन्त कबीर, निराला, दिनकर, जैसे कवियों की मुखर भारती सभी अपने कर्त्तव्यों से अबोध हमें जगा रही हैं और जगाती रहेंगी। महाप्राण निराला की निम्न पंक्तियाँ इस विशिष्ट अवसर पर विशेष रूप से मन में गूँज रही हैं—

जागो फिर एक बार।
प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें
अरुण-पंख तरुण-किरण
खड़ी खोल रही द्वार
जागो फिर एक बार!

उगे अरुणाचल में रवि
आयी भारती-रति कवि-कण्ठ में
क्षण-क्षण में परिवर्तित
होते रहे प्रकृति पट
गया दिन, आयी रात
गयी रात, खुला दिन
ऐसे ही संसार के बीते दिन पक्ष मास
वर्ष कितने ही हजार
जागो फिर एक बार !
सिंही की गोद से छीनता है शिशु कौन ?
मौन भी क्या रहती वह रहते प्राण !
रे अजान,
एक मेष माता ही
रहती है निर्निमेष—
दुर्बल वह—
छिनती सन्तान जब
जन्म पर अपने अभिशप्त
तप्त आँसू बहाती है।
किन्तु क्या ?
योग्य जन जीता है
पश्चिम की उक्ति नहीं
गीता है, गीता है
स्मरण करो बार-बार
जागो फिर एक बार !
पशु नहीं, वीर तुम;
समर-शूर, क्रूर नहीं;
कालचक्र में हो दबे,
आज तुम राज कुँवर,
समर सरताज !

मुक्त हो सदा ही तुम
बाधा-विहीन-वंध छन्दे ज्यों
डूबे आनन्द में सच्चिदानन्द रूप
महा मन्त्र ऋषियों का
अणुओं परमाणुओं में फूँका हुआ,
"तुम हो महान्,
तुम सदा हो महान्,
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता कामपरता,
ब्रह्म हो तुम,
पद रज भर भी है नहीं
पूरा यह विश्व-भार
जागो फिर एक बार !

शिव—अर्थ, स्वरूप व विशेषताएं

अथर्ववेद के पूर्व व्याख्यात मंत्र में 'शिव' शब्द रात्रि का विशेषण वनकर आया है किन्तु 'शिवरात्रि' शब्द लौकिक व्यवहार में तत्पुरुष समास के रूप में समस्त पद है जिस का अर्थ होगा—शिव को रात्रि। यह 'शिव' कौन है जिस की रात्रि यह शिवरात्रि कही जाती है। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश प्रथमसम्मुल्लास में परमेश्वर के सौ प्रसिद्ध नामों में 'शंकर' और 'शिव' दोनों का परिगणन किया है और दोनों का एक ही अर्थ किया है—"यः शं कल्याणं सुखं करोति स शंकरः—जो कल्याण अर्थात् सुख का करनेहारा है इस से उस ईश्वर का नाम शंकर है।" इसी प्रकार शिवु कल्याणे इस धातु से 'शिव' शब्द सिद्ध होता है—जो कल्याणस्वरूप और कल्याण का करनेहारा है इसलिए उस परमेश्वर का नाम 'शिव' है।" यजुर्वेद (16.41) में ऐसे परमेश्वर को 'शिव' ही नहीं शिवतर, शिवतम, मयोभू, मयस्कर आदि नामों से स्मरण कर उस के प्रति नमन किया है। जिस रात्रि की एकान्त, शान्त गोद में बैठकर साधक स्वयं शिव, शम्भू या शंकर वनने की साधना किया करते हैं वह कल्याण-कारिणी रात्रि ही शिवरात्रि है।

पौराणिक कल्पना के अनुसार शिव एक देवता विशेष हैं जो कैलाश पर्वत पर निवास करते हैं, हिमालय की पुत्री पार्वती या उमा से जिनका विवाह हुआ है। दांए हाथ में जिनके त्रिशूल और वांए हाथ में डमरू है। सिर पर गंगा, मस्तक पर अर्धचन्द्र है। वह त्रिनेत्र है। नादिया अर्थात् वृषभ उसकी सवारी है। गले में मुण्डमाल है। वह बाघाम्बर करता है। गले में सर्प लिपटे रहते हैं। देवों के कष्ट दूर करने के लिए उसने विषपान कर 'नीलकण्ठ' नाम पाया आदि आदि। यदि इस पौराणिक कल्पना को प्रतीकात्मक मानें तो 'शिव' हमारे परिवार के एक ऐसे देव सिद्ध होते हैं जिनकी पूजा या सत्कार यज्ञ ही नहीं ऋषि दयानन्द की भावना के अनुसार महायज्ञ है। वह सत्यार्थ प्रकाश 11वें समुल्लास में उल्लिखित पंचायतन पूजा में अन्यतम है। वह है परमयोगी, पूर्णविद्वान्, उपकारी, परिव्राजक संन्यासी। जिस के लिए तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा है–

अतिथिदेवोभव (तैत्तिरीयोपनिषद् 1.11.1.5) अतिथि को देवता मान कर उसकी सेवा करो।

अतिथि ही शिव है

पारिवारिक देवों में अतिथि ही शिव है। अतिथि कौन है ? आचार्य मनु ने अतिथि का लक्षण निम्न किया है—

एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते।

मनुस्मृतिः 3.102

ब्राह्मण (विद्वान् व्यक्ति) जो एक ही रात्रि तक पराये घर में रहता है उसे अतिथि कहते हैं। क्योंकि जिस कारण से वह नित्य नहीं ठहरता है अथवा जिसका आना अनिश्चित होता है इसी कारण उसे अतिथि कहा जाता है। ऋषि दयानन्द का मत है—

"अतिथियज्ञ का अधिकारी वही है जो विद्वान् हो एवं जिस का आना-जाना और ठहरना अनियत हो। वह चाहे किसी वर्ण का हो उस की सेवा करना यह एक श्रेष्ठ कर्म है।"

सद्गृहस्थ के लिए वह धन्य 'शिवरात्रि' है जिस रात्रि उसके घर कोई विद्वान् अतिथि निवास करता है उसे व्रती रहकर अतिथि रूप शिव की पूजा अर्थात् सत्कार करने का अवसर मिलता है। ऐसे 'शिवरात्रि पूजा' के अवसर हमारे घरों में नित्यप्रति आते रहें-यह शिवरात्रि का पारिवारिक सन्देश है।

अतिथि शिव कैसे है इस के लिए पौराणिक मान्यता में कल्पित शिव का स्वरूप सब से बड़ा प्रमाण है। ये शिव वास्तव में अतिथि के प्रतीक हैं और अतिथि-सत्कार ही शिव-पूजा है।

पौराणिक शिव और सर्वहितकारी, निष्कपटी, पूर्ण विद्वान्, धार्मिक. परमयोगी, नित्य भ्रमणशील अतिथि में कोई अन्तर नहीं है।

शिव कैलास वासी हैं। यह 'कैलास' क्या है ? अमरकोश-व्याख्या (रामाश्रमी टीका पृ० 35) के अनुसार—के+लस्=कैलास। 'क' प्रत्यय से 'लस् श्लेषण क्रीड़नयोः' धातु से इस की सिद्धी होती है। 'कम् इति जलम् ब्रह्म वा तस्मिन् के जले ब्रह्मणि लासः लसनमस्य इति कैलासः।' 'क' अर्थात् ब्रह्म में क्रीड़ा करने का जिस का स्वभाव हो। यहाँ 'क' से तात्पर्य ब्रह्म या ब्रह्मजल से है क्योंकि 'क' नाम ब्रह्म का है। परमयोगी अतिथि उस ब्रह्मजल में सदा निमग्न रहता है, उस में उसकी क्रीड़ा है। यह ब्रह्म क्रीड़ा ही उसका स्वभाव बन गया है। परम आनन्द की प्राप्ति होने से वह कैलास में सदा स्थित रहता है। यही शिवरूप परमयोगी अतिथि का कैलास-वास है। पर्वत दृढ़ता का प्रतीक है अर्थात् अपने इस व्रत में वह दृढ़ रहता है।

शिव त्रिनेत्र हैं। यह तीसरा नेत्र उन के मस्तक पर स्थित है जो ज्ञान नेत्र है। इसी नेत्र से वे काम रूप महाशत्रु का दमन करते रहते हैं। सामान्य व्यक्तियों का यह नेत्र या तो होता ही नहीं अथवा होता है तो बन्द रहता है। किन्तु परमयोगी शिव (अतिथि) इस ज्ञाननेत्र को खोलकर कामवासना को भस्मशेष कर देते हैं अर्थात् उन का मस्तिष्क विशुद्ध विचारों से परिपूर्ण रहता है। वे कभी कामासक्त होकर अनाचार नहीं करते। इसलिए वे परम धार्मिक भी हैं।

शिव त्रिशूलधारी हैं। त्रिशूल=तीन शूल अर्थात् तीन कष्ट । ये तीन प्रकार के दुःख– आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक हैं। ये तीनों कष्ट शूल के समान कष्टदायक होने से त्रिशूल हैं। परमयोगी अतिथि–शिव योगसाधना से इन तीनों दुःखों के त्रिशूल को अपनी दायीं मुट्ठी में कर लेना है अर्थात् तीनों उस के वश में हो जाते हैं, अतः वह घूम-घूम कर अन्य सांसारिक जनों के इन कष्टों को दूर भी करता रहता है।

शिव के दूसरे हाथ में 'डमरू' है। यह 'डमरू' शब्द संस्कृत दमरू शब्द का अपभ्रंश है जो दो शब्दों से बना है—दम (दमन) + रुः (ध्वनि) अर्थात् दमन—संयम रूप ध्वनि। शिव रूप अतिथि के प्रत्येक कार्य में दमन (संयम)—ध्वनि व्यक्त होती रहती है अर्थात् उसका जीवन महान् संयमी होता है।

शिव के मस्तक पर गंगा का निवास है। मस्तकवर्ती यह गंगा ज्ञान गंगा है। किसी कवि ने कहा भी है—

जब ज्ञान की गंगा में नहाया,
तब मन में क्लेश जरा न रहा।

इस अतिथि को पूर्ण विद्वान् और ज्ञानवान् कहा गया है क्योंकि उस के मस्तिष्क में ज्ञान-गंगा हिलोरें मारती है। इस ज्ञान गंगा को अपने तक सीमित न रखकर वह संसार के भले के लिए प्रवाहित करता रहता है। इसलिए वह परोपकारी भी है। वह भेदभाव भूलकर सब का भला करता है। वह अतिथि ही क्या जो निष्कपटी और परोपकारी न हो।

शिव के सिर पर दूज का चन्द्रमा निवास करता है। यह द्वितीया का चन्द्रमा जितना प्यारा, आशा का प्रतीक व सौम्य होता है उतना पूर्णिमा का चन्द्रमा भी नहीं होता। शिव रूप योगी अतिथि इन सभी विशेषताओं को शिरोधार्य किये रहता है।

शिव रूप योगी अतिथि के चारों ओर भयंकर विषधर लिपटे रहते हैं। ये विषधर—काम, क्रोध, लोभ, मद, मोक्ष, ईर्ष्या, द्वेष, पक्षपात

आदि हैं जिन्हें वह अन्त: करण से बाहर निकाल फेंकता है। ये भयंकर विषधर अथवा इन से पूर्ण यह संसार उसके चारों ओर उसे लपेटे रखता है पर निरासक्त होने से उसकी इनसे कोई हानि नहीं हो पाती।

शिव भयंकर हलाहल पान करने से नील कण्ठ हैं। ये योगी अतिथि भी संसार के कष्टों का स्वयं पान करने से विषपायी नीलकण्ठ हैं। ये मनुष्यों पर आनेवाली बड़ी से बड़ी कठिनाई को स्वयं झेल जाते हैं और उन्हें अभय बना देते हैं।

योगी का वास (वेषभूषा) बाघाम्बर है और शिव का भी। शिव गले में मुण्डमाल धारण किये रहते हैं और योगी भी। 'मुण्डमाल' उसके पूर्व जन्मों का प्रतीक है जिन को वह जानता गया है और अपने गले में उन की माला बनाकर धारण किये रहता है। किसी भी व्यक्ति की पहचान उस के सिर से होती है क्योंकि योगी ने अनेक जन्म धारण किये हैं, अत: उसके ये जन्म मुण्ड न होकर मुण्डमाल हैं। अतीत जन्मों को योग द्वारा जानना ही मुण्डमाल धारण करना है। गीता में योगेश्वर कृष्ण कहते हैं—

बहूनि में व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप।

(गीता 4.5)

—हे अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुत जन्म व्यतीत हो चुके हैं जिन्हें मैं तो जानता हूँ किन्तु तू नहीं जानता।

शिव शरीर पर भस्म लपेटे रहते हैं। शिव रूप योगी अतिथि का भी शरीर पर भस्म-लेपन से सम्बन्ध है। प्रत्येक योगी शरीर की चरम परिणति भलीभांति अनुभव करता है।

भस्मान्तं शरीरम् (यजुर्वेद 40. 15)

—यह शरीर अन्त में भस्म हो जाने वाला है। अत: वह शरीर को आत्मा पर लिपटी भस्म ही समझता है उसमें आसक्त नही होता। यही उसका भस्मलेपन है।

शिव की सवारी नादिया या वृषभ है। इस योगी शिव अतिथि की सवारी भी यही है। 'नादिया' नाद का अपभ्रंश है। नाद ध्वनि को कहते हैं और सर्वश्रेष्ठ ध्वनि प्रणव (ओंकार) है। यह उसके लिए 'वृषभ' (वृषभो वर्षणात्) अर्थात् सुखों की वर्षा करने वाला है। परमयोगी अतिथि का स्वयं का जीवन उस प्रणव ध्वनि में सदा लीन रहता है—यही उस की नादिया वृषभ की सवारी है।

शिव ने 'उमा' से विवाह किया है। इस उमा का स्वरूप—ज्ञान केनोपनिषद् (3.12) से प्राप्त होता है—

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम
वहु शोभमानामुमां हैमवतीम् ।

—उस आकाश में उसे एक स्त्री दिखाई पड़ी जिस का नाम 'उमा' था। जो सुवर्णमयी (हैमवती) और वहुत शोभमाना थी।

शोभमाना हैमवती उमा ही हिमालय-पुत्री पार्वती है। इस का नाम उमा इसलिए है—'उ ब्रह्मीयते ज्ञायते यया सा ब्रह्मविद्या उमा' अर्थात् जिस से ब्रह्म जाना जाए वह ब्रह्मविद्या 'उमा' है। प्रकाशवती होने से यह 'हैमवती' और 'वहुशोभमाना' है। योगी शिव अतिथि इसी हैमवती उमा से पाणिग्रहण करता है अर्थात् वह ब्रह्मविद्या को प्राप्त कर ब्रह्म तक पहुंचने या ब्रह्मप्राप्ति में सफल होता है।

शिव कल्याण रूप हैं। अतिथि भी कल्याणव्रती होता है। वेद में उसे 'मयोभव' और 'मयस्कर' (कल्याणकारी) नाम दिया गया है—

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च
नमः शंकराय च मयस्कराय च
नमः शिवाय च शिवतराय च

(यजुर्वेद 16.41)

दूसरों का कल्याण करना और उन्हें सुख पहुंचाना यह शिव अतिथि का परम स्वभाव है। वह सत्संग और सत्योपदेश द्वारा सब को सुख पहुँचाता है। आचार्य मनु और ऋषि दयानन्द दोनों ने ही अतिथि का प्रधान कर्त्तव्य गृहस्थों को अपने सदुपदेश द्वारा उन का कल्याण करना और उन्हें सुख पहुँचाना बताया है जो उस के 'शिव' नाम की सार्थकता को प्रतिपादित करता है।

शिव का अपर नाम 'रुद्र' है। रुद्रदेवतात्मक एक मंत्र में 'अम्बिका' को उसकी 'स्वसा' कहा है—

एष ते रुद्रभागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा

—(यजुर्वेद 3.57)

इस मंत्र के भाष्य में ऋषि दयानन्द 'अम्बिका' पद का अर्थ वाणी या वेदवाणी और 'स्वसा' का अर्थ उत्तम विद्या या उत्तम क्रिया करते हैं। तात्पर्य यह है कि रुद्र या शिव वाणी तथा विद्या के अधिपति हैं। पौराणिक शिव के सम्बन्ध में मान्यता यह है कि वे शब्द शास्त्र के आदि-आचार्य हैं। पाणिनि व्याकरण के आधारभूत 14 सूत्र 'माहेश्वर (शिव) सूत्र' कहे जाते हैं। यह शिवरूप अतिथि भी पूर्ण विद्वान् होने से वाणी का स्वामी है यह भी दोनों में समानता है।

ऐसे शिव परमयोगी का साक्षात् उदाहरण परमयोगी महर्षि दयानन्द स्वयं हैं।

अतिथि शिव की पूजा : महिमा और लाभ

इस शिव-पूजा या अतिथि-सत्कार की महिमा और लाभों का विस्तार से वर्णन वेद, मनुस्मृति और सत्यार्थ प्रकाश जैसे ग्रंथों में हुआ है। ऋषि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश (चतुर्थ समुल्लास) में लिखते हैं—

"जब तक उत्तम अतिथि जगत् में नहीं होते तब तक उन्नति भी नहीं होती। उन के सब देशों में घूमने और सत्योपदेश करने से पाखण्ड की वृद्धि नहीं होती और सर्वत्र गृहस्थों को सहज से सत्य विज्ञान की प्राप्ति

होती रहती है और मनुष्यमात्र में एक ही धर्म स्थिर रहता है। बिना अतिथियों के सन्देह-निवृत्ति नहीं होती। सन्देह-निवृत्ति के बिना दृढ़ निश्चय भी नहीं होता। निश्चय के बिना सुख कहाँ ?" मनुस्मृति म अतिथि-पूजन के चार लाभ बताये गये हैं—

न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत्
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं वाऽतिथि पूजनम्।

—मनुस्मृति 3. 106

जिस पदार्थ को अतिथि को नहीं खिलावे उसे गृहस्थ स्वयं भी न खावे अर्थात् जैसा स्वय भोजन करे वैसा ही अतिथि को भी दे। अतिथि का सत्कार करना सौभाग्य, यश, आयु और सुख को देने और बढ़ाने वाला है।

अथर्ववेद में कहा है—

सर्वो वा एप जग्धपाप्मा यस्यान्नमश्नन्ति —अथर्ववेद 9.6.25

—वह व्यक्ति निष्पाप हो जाता है जिसका अन्न अतिथि भक्षण करते हैं। अथर्ववेद में अन्यत्र भी अतिथि-सत्कार की महिमा वर्णित है—

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति।
ये पृथिव्यां पुण्या लोकास्तानेव तेनावरून्द्धे॥

—अथर्ववेद 15.13. 1-2

ऐमा विद्वान् व्रात्य (व्रती अतिथि) जिस के घर में एक रात्रि निवास करता है वह पृथिवी स्थित समस्त पुण्यलोकों को प्राप्त कर लेता है।

संक्षेप में अतिथि-सत्कार के निम्न लाभ हैं—

1. पाखण्ड-विनाश। 2. सहज ज्ञान की प्राप्ति। 3. सन्देह-निवृत्ति द्वारा दृढ़ निश्चयपूर्वक सुख-लाभ। 4. सौभाग्य-वृद्धि। 5. यश-विस्तार। 6. दीघ आयु। 7. पुण्य प्राप्ति।

प्रसिद्ध सन्त दादु के शिष्य सन्त रज्जब जी कहते हैं—

साधू सदनि पधारते सकल होहिं कल्यान।
रज्जब अघ अवगुण दुरहिं पुनि प्रगटे ज्यों भान।

साधुजन जब अतिथि बनकर घर पधारते हैं तब गृहस्थों का सम्पूर्ण कल्याण होता है। पाप-नक्षत्र छिप जाते हैं और पुण्यों का भानु उदय हो जाता है।

सद्व्रती गृहस्थ को समय-समय पर शिव-अतिथि के रूप में उपस्थित इन ज्ञानी, महात्मा, परमयोगी, संन्यासियों से मार्गदर्शन प्राप्त होता है। गृहस्थ उनके पास नहीं अपितु वे अतिथि उस गृहस्थ की कल्याण-कामना से यथावसर उसके पास उपस्थित होते हैं। अतः उन की सेवा का अवसर प्राप्त न कर यदि वह इन लाभों से वंचित ही रहा तो उसे सुख, सौभाग्य, यश, आयु, पुण्य-प्राप्ति, धर्मलाभ, मार्गदर्शन कैसे प्राप्त हो सकेगा ? इस कारण वह अतिथिसेवा को अपने जीवन का परम सौभाग्य समझता है। अतः जो अतिथि गृहस्थ के यहां भोजन व सत्कार तो प्राप्त करते हैं किन्तु अपने सदुपदेश तथा सत्संग द्वारा उस परिवार को लाभान्वित नहीं करते वे अतिथि भी सच्चे अतिथि नहीं हैं। वे अपने कर्त्तव्य से पराङ्मुख हो अश्रद्धा के पात्र भी बनते हैं।

अतिथि-सत्कार की परम्परा भारत में बहुत प्राचीन है। राम स्वयं भक्त भीलनी तथा भरद्वाज ऋषि के तपोवन में अतिथि के रूप में पधारे थे। अतिथि सुदामा का जो सत्कार योगिराज श्रीकृष्ण ने द्वारिका में किया था वह इतिहास का एक उज्जवल पृष्ठ बन गया है। अपने बालसखा विप्र सुदामा जब उनके घर पधारते हैं तब उस दृश्य का वर्णन हिन्दी के महाकवि नरोत्तमदास ने 'सुदामा चरित' में जैसा किया हैं उसे देखकर जैसे उनकी लेखनी भी रो उठी है—

देखी सुदामा की दीन दशा करुणा करिके करुणानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं नयनन के जल सों पग धोये।

स्वयं श्रीकृष्ण ने भी विदुर के यहां अतिथि रूप में शाक-पात तथा कदली-फल खाकर परम सन्तोष का अनुभव किया था। राजा अश्वपति के यहां उद्दालक आदि ऋषि अतिथि बनकर ही उपस्थित हुए थे। सम्राट् रघु की अतिथिशाला को ब्रह्मचारी कौत्स ने जिस प्रकार सुशोभित किया

महाकवि कालिदास ने 'रघुवंश' में उसका विस्तार से वर्णन किया है। कठोपनिषद् में बालक नचिकेता अतिथि बनकर आचार्य यम के घर उपस्थित हुए। यम के घर पर उपस्थित न होने से नचिकेता तीन रात्रि पर्यन्त भूखे-प्यासे द्वार पर ही बैठे रहे। लौटने पर यम को बड़ा पश्चात्ताप अनुभव हुआ। यम की पत्नी तथा मंत्रियों ने उन्हें परामर्श देते हुए कहा—

आशा प्रतीक्षे संगतं सूनृतां चेष्टापूर्त्ते पुत्र पशूंश्च सर्वान्
एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन्वसति ब्राह्मणे गृहे।

—कठोपनिषद् 1.1.8

जिस के घर में ब्राह्मण अतिथि बिना भोजन किये रहता है उस मन्द बुद्धि की ज्ञात और अज्ञात वस्तुओं की प्राप्ति की इच्छाएँ, उनके संयोग से प्राप्त होने वाले फल, प्रियवाणी से होनें वाले लाभ, यागादि इष्ट एवं उद्यानादि पूर्तकर्म[1] के फल तथा समस्त पुत्र, पशु आदि नष्ट हो जाते हैं।

कठोपनिषद् के अनुसार अतिथि नचिकेता की तीन रात्रियों के बदले तीन वरों से यम ने सन्तुष्ट किया।

शिव के रूप में अशिव

आधुनिक युग में शिव (साधु) के रूप में अशिव—ठग, वंचक, धूर्त, ढोंगी अतिथि वेषधारी साधु—संन्यासियों से आये दिन जो हानि हो रही है वह किसी से छुपी नहीं है। विशेष रूप से घर की देवियाँ सोनें के आभूषण दुगुने होने तथा अन्य प्रलोभनों में शीघ्र आ जाती हैं। ये 'साधु' घरों में प्रायः उस समय आते हैं जब गृहस्वामी किसी कार्य अथवा आजीविका से घर से बाहर गये हुए होते हैं। जगतजननी भगवती सीता जैसी देवियाँ भी जब अतिथि रूप में आये 'साधु' रावण के छल में आ सकती हैं तो अन्यों की तो चर्चा ही व्यर्थ है। प्रत्येक युग और काल में ऐसे प्रवंचक सदा रहे हैं। संस्कृत कवि गुणाढ्य ने अपनी 'वृहत्कथा' में ऐसी ही एक मनोरंजक कथा का उल्लेख किया है—

---

1. वह कर्म जो मनुष्य को करने चाहिए।

किसी नगर के समीप एक बाबा कुटिया बनाकर अपने शिष्यों सहित रहा करते थे। वे 'मौनी बाबा' नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध थे। यहाँ तक कि नगर में भिक्षाटन भी वे मौन रह कर ही किया करते थे। प्रतिदिन की भांति उस दिन भी वे नगरसेठ कें यहाँ भिक्षार्थ गये। उस समय सेठ सेठानी किसी आवश्यक कार्य में संलग्न थे। अतः उन्होंने अपनी युवती पुत्री को भिक्षा प्रदान करने द्वार पर भेजा। मौनी बाबा का मन उस कन्या के रूप को देख कर विचलित हो गया। उन के मुख से उस समय सहसा निकला—"यह 'विपत्ति' कहाँ से आ गई ?"

सेठजी को जब यह पता चला कि मौनी बाबा ने अपना मौन व्रत तोड़कर किसी भावी विपत्ति की भविष्यवाणी की है तो वे बहुत घबराये। बाबा के पास जाकर उन्होंने निवेदन क्रिया—

"बाबा ! आप सिद्ध पुरुष हैं; भविष्यद्रष्टा हैं; संसार की कल्याण-कामना से सबको आगामी आपत्ति से सावधान करने वाले हैं। अतः मेरी विपत्ति भी आप दूर करें।"

बाबा ने बात बदलते हुए कहा—

"विपत्ति तुम्हारे कारण नहीं, तुम्हारी कन्या के कारण है। जब इस का विवाह होगा तब घर के सब लोग तड़प तड़प कर मर जाएँगे।"

"इस का कोई उपाय तो होगा महाराज !" सेठजी ने बड़ी विनम्रता दिखाते हुए प्रश्न किया।

"उपाय सब का है।" बाबा ने तनिक गम्भीर होकर कहा—

"प्रातः काल होने से पूर्व इस कन्या को लकड़ी के एक सन्दूक में बन्द कर रात में नदी में प्रवाहित कर दो। उस सन्दूक में दो-तीन छिद्र रख देना जिस से इसे साँस आता रहे तथा एक दीपक भी प्रज्वलित कर उस सन्दूक पर रख देना। न यह लड़की तुम्हारे पास रहेगी और न तुम्हें कोई मुसीबत ही आएगी।"

सेठ जी ने उस रात ऐसा ही किया। कन्या वहुत रोई, अनुनय-विनय की, किन्तु कोई प्रभाव नहीं हुआ। इधर नदी-विहार के लिए उस देश का राजकुमार नदी-किनारे वहीं आ निकला। जहाँ वह सन्दूक नदी में वहा जा रहा था। सन्दूक देखकर राजकुमार ने अपने सेवकों से उसे बाहर निकलवाया। खोलने पर उसे देखकर आश्चर्य हुआ कि उस में एक नवयुवती कन्या वन्द थी। कन्या ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सुनकर राजकुमार ने उस कन्या से गान्धर्व विवाह कर उसे अपनी राजधानी भिजवा दिया। किन्तु उस सन्दूक में सेवकों द्वारा एक मोटा बन्दर जंगल से पकड़वा वन्द कर दिया तथा उस सन्दूक को पुनः उसी प्रकार प्रज्वलित दीप सहित नदी में प्रवाहित कर दिया। उधर मौनी वावा ने अपने शिष्यों को भेजकर उस सन्दूक को नदी से निकलवाया और अपनी कुटिया में रखवा दिया। सब शिष्यों को वावा ने यह आदेश दिया कि 'आज रात मैं अपनी कुटिया में एक तान्त्रिक प्रयोग करूंगा, अतः रात में कोई मेरी कुटिया के पास न रहे।'

रात्रि के एकान्त में बाबा ने उस सन्दूक को खोला। सन्दूक खुलते ही कई घण्टों से वन्द रहने से परेशान और क्रोधित बन्दर ने बाहर निकल उस बाबा को नोच-नोच लहूलुहान कर दिया और पुनः जंगल में भाग गया। वह ढोंगी प्रवंचक वावा वदनामी के डर से वहाँ से अन्यत्र कहीं चला गया।

गुणाढ्य की कथा तो यहाँ समाप्त हो गई किन्तु वास्तव में यह कथा समाप्त नहीं हुई है। आज भी ऐसे ढोंगी बावा घूम-घूम कर आतिथ्य सत्कार की आड़ में कितने ही घरों को बरबाद कर रहे हैं जिनसे सदा सावधान और सजग रहने की आवश्यकता है।

आचार्य मनु ने ऐसे दुष्ट, पाखण्डी, वैडाल-वृत्ति साधुओं का वाणि-मात्र से भी सत्कार न करने के लिए कहा है—

पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकान् शठान्।
हैतुकान् बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेनापि नार्चयेत्॥

—मनुस्मृति 4.30

ऋषि दयानन्द मनु के इस श्लोक की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि—

"पाखण्डी, वेदनिन्दक, नास्तिक—जो ईश्वर वेद और धर्म को न मानें, अधर्माचरण करनेहारे, हिंसक, शठ, मिथ्याभिमानी,, कुतर्की और बकवृत्ति अर्थात् पराये पदार्थ हरने व बहकाने में बगुले के समान अतिथि-वेषधारी बन के आवें उन का वचनमात्र से भी सत्कार गृहस्थ कभी न करे।"
संस्कारविधि (गृहाश्रम प्रकरण)

शिव अतिथि की पूजा

शिव अतिथि की पूजा या सत्कार की विधि अत्यन्त सरल और सीधी है। अथर्ववेद, मनुस्मृति, सत्यार्थप्रकाश आदि में इसका विस्तार से वर्णन हुआ है। सत्यार्थप्रकाश (चतुर्थ समुल्लास) के अनुसार—

1. प्रथम पाद्य (पद प्रक्षालनार्थं जल), अर्घ्य (मुख धोने का जल) और आचमनीय (आचमन जल) तीन प्रकार का जल देना चाहिए।
2. पश्चात् सत्कार पूर्वक आसन पर बैठाना चाहिए।
3. खान-पान आदि उत्तमोत्तम पदार्थों से सेवा-शुश्रूषा कर उनको प्रसन्न करना चाहिए।
4. सत्संग द्वारा उन से प्रश्नोत्तर कर धर्म, अर्थ, काम और मोक्षप्रापक ज्ञान-विज्ञान पूर्ण उपदेशों का श्रवण करना चाहिए तथा उपदेशानुसार चाल-चलन भी रखना योग्य है। मनु महाराज कहते हैं—

आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनाम्
उत्तमेषूत्तमं कुर्याद्धीने हीनं समे समम्।

—मनुस्मृति 3. 107

जब गृहस्थ के समीप अतिथि आवें तब आसन, निवास, शय्या, पश्चाद्गमन, समीप में बैठना आदि सत्कार जैसा का वैसा अर्थात् उत्तम का उत्तम, मध्यम का मध्यम और निकृष्ट का निकृष्ट करे।

अथर्ववेद के 9वें तथा 15वें काण्डों में विद्वान् व्रात्य अतिथि के सेवा-सत्कार का विस्तार से वर्णन है—

पद्यस्यैवं विद्वान्व्रात्योऽतिथिगृंहाना मागच्छेत् ।
स्वयमेनभम्युपेत्य ब्रूयाद् व्रात्यक्वा ऽ वात्सीर्व्रात्योदकं
व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु
व्रात्य यथाते वशस्नथास्तु व्रात्ययथा ते निकामस्तथाअस्तुरहरह ॥
—अथर्ववेद 15. 11. 1-2

जिस गृहस्थ के घर में ऐसा विद्वान् व्रात्य अतिथि वनकर आये तब स्वयं उठकर उनका सत्कार करे और सादर निवेदन करे—'हे व्रात्य ! यह जल ग्रहण करें। व्रात्य ! आपने अब तक कहाँ निवास किया ? व्रात्य ! आप तृप्त हों। आप को जो प्रिय हो वैसा करें। आप की जो कामना या इच्छा हो वह पूर्ण हो।"

प्रेम का भोजन और प्रेमपूर्ण अतिथि-सत्कार शिवरूप अतिथि की पूजा का मुख्य आधार है। प्रसिद्ध नीतिग्रन्थ 'पंचतंत्र' में कितना सुन्दर कहा है—

एह्यागच्छ समाश्रयासनमिदं कस्मात्चिरात् दृश्यसे ?
का वार्ताह्यतिदुर्बलोऽसि कुशलं प्रीतोऽस्मि ते दर्शनात् ।

अतिथि के घर पधारने पर बड़े प्रेम से निवेदन करना चाहिए—"आइये अतिथि देव ! इस आसन पर विराजिए। क्या कारण है कि आज इतने दिनों पश्चात् आपके दर्शन हुए हैं ? क्या बात है (देर से दर्शनों के कारण) आप अति दुर्बल से प्रतीत हो रहे हैं ? सब प्रकार से कुशल तो हैं ? आपके शुभदर्शनों से मन अति प्रसन्न हो रहा है।"

शिवरात्रि का यही वैदिक सन्देश है। हमारी रात्रियाँ शिव और शुभ बनें क्योंकि शिवरात्रि ही दिव्य जीवन की प्रतीक है। हम 'शिव' की आराधना, पूजा, सेवा, सत्कार में सदा सावधान और दत्तचित्त रहें। कभी 14वीं की रात 14 वर्ष के बालक मूलशंकर ने निबोध या प्रबोध के द्वारा सच्चा बोध प्राप्त किया था और हमें सन्देश दिया था—'सदा जागते रहो'। वह 'शंकर' स्वयं 'शंकर' बन उस 'दिव्य शंकर' में तल्लीन हो गया। संसार ऋषि दयानन्द के रूप में उसके प्रति सदा नतमस्तक रहेगा।

मस्ताना यो

❀ मेरा प्रणाम हो उस महान् गुरु दयान
के आध्यात्मिक इतिहास में सत्य और
मन ने भारतीय जीवन के सब अंगों

❀ जब भारत के उत्थान का इतिहास
दयानन्द सरस्वती को उच्चासन पर

❀ इस बात का श्रेय दयानन्द को ही प्राप्त होगा कि उन्होंने सर्व-प्रथम वेदों की व्याख्या के लिए निर्दोष मार्ग का आविष्कार किया जंगली लोगों की कही जाने वाली पुस्तक के धर्म-पुस्तक होने का वास्तविक अनुभव उन्होंने ही किया। —अरविन्द घोष

❀ मैं गर्व नहीं करता परन्तु आवश्यकता हो तो मैं दयानन्द के नाम पर अपना शिरच्छेद करने में इतस्ततः नहीं करूंगा।

—देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय

❀ दहकती आग के मैं लाल अंगारों से पूछूंगा
हटा के मौजों को तूफान की धारों से पूछूंगा।
पहाड़ों से, चट्टानों से, मैं दीवारों से पूछूंगा
दयानन्द का पता मैं चाँद और तारों से पूछूंगा।
गुरुवर के लिये मैं जोर से नारे लगाऊँगा
मैं अपने दर्द की आवाज़ दुनियाँ को सुनाऊँगा
अगर सूरत न पाऊँगा वहीं धूनी रमाऊँगा
बिगड कर जोश में अजमेर के यारों से पूछूंगा।
पिलाया जहर का प्याला कहर था किसने यह ढाया
सिला उस खून का दुनियाँ के गद्दारों से पूछूंगा॥

—एक मुसलमान भक्त कवि (ऋषि निर्वाण के समय)